ISSN 2278-8808
An International Peer Reviewed
SCHOLARLY RESEARCH JOURNAL
FOR INTERDISCIPLINARY STUDIES

# बौद्ध दर्शन के "मध्यम मार्ग" सम्प्रत्यय का शैक्षिक महत्व

डॉ0 विन्दुमती द्विवेदी
सहा0 आचार्य, शिक्षाशास्त्र, उत्तराखण्ड संस्कृत विश्वविद्यालय,

मानव शिशु का इस धरती पर अवतरण एक महत्वपूर्ण उददेश्य के साथ होता है। वह अपने पूर्व के संस्कारों एवं निर्धारित उद्येष्यों के साथ जन्म लेता है। तदनुकूल परिस्थितियॉ बनती हैं, सहयोग एवं वातावरण मिलता है और वह अपने उदेश्य तक पहुॅचने में सफल होता है।

शिक्षा द्वारा व्यक्ति की अन्तर्निहित शक्तियों का बाहय प्रकटीकरण होता है। इस प्रक्रिया में सहयोगी समस्त पक्ष जहॉ पहले से ही निर्धारित होते हैं, वहीं व्यक्ति का अपना प्रयास सर्वाधिक महत्वपूर्ण होता है। बौद्ध शिक्षा दर्शन में मध्यम मार्ग की अवधारणा, अनुशासित एवं सदाचारपूर्ण जीवन निर्वहन का प्रथम सोपान है।

"अति सर्वत्र वर्जयेत्" सिद्धान्त के आधार पर यह अभिव्यक्त होता है कि किसी भी सीमा का उल्लंघन सदैव हानिकारक होगा। अतः अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए मध्यम मार्ग का अनुसरण अनुकरण आवश्यक है।

प्रस्तुत शोध– पत्र में यह दर्शाने का प्रयत्न किया गया है कि विद्यार्थी जीवन से लेकर जीवन के प्रत्येक आश्रम में सफलता प्राप्त करने के लिए मध्यम मार्ग कैसे उपयोगी होता है।वाणी व्यवहार में, आचरण में,दायित्व निर्वहन में एवं स्वयं के दिशाबोध में इस मार्ग का चयन सफलता प्राप्त करने में सहायक होता है।

भारत में वैदिक काल के पश्चात् बौद्धकाल का प्रादुर्भाव हुआ। जब कोई विचारधारा अति को पार करती है तो दूसरी विचारधारा को जन्म मिलता है। हमारे देश मे भी उत्तर वैदिककाल में कठोर और कर्मकाण्ड की अति हुई तो इसका विरोध प्रारम्भ हुआ।

भारत देश की इस पुण्यभूमि पर ई0पू0 563 में महात्मा बुद्ध का अवतरण हुआ। राजवैभव के सुख सुविधाओं को त्यागकर उन्होंने सांसरिक दुःखों की अनुभूति की। दुःखनिवृत्ति के लिए उन्होंने तपस्या की और कर्मकाण्डप्रधान वैदिक धर्म के स्थान पर करुणाप्रधान मानवतावादी बौद्ध धर्म की स्थापना की। भारत में यह धर्म 500 ई0 पू0 से 1200 ई0 तक प्रभावी रहा। इतिहासकार इस काल को बौद्धकाल कहते हैं।

वस्तुतः बौद्ध दर्शन उदार और लोकतान्त्रिक व्यवस्था का परिचायक है। आत्मानुशासन एवं आत्मबोध ही इस दर्शन की धुरी है।

गौतम बुद्ध का व्यक्तित्व, बौद्धधर्म के प्रचार प्रसार के लिए अपनाई गयी विधि उनका चिन्तन, उनके नियम एवं सिद्धान्त, सभी शिक्षा के क्षेत्र में अपना अमिट प्रभाव डालते हैं। बौद्ध दर्शन में मानव प्रतिश्ठा पर अधिक बल दिया गया है। बुद्ध ने आत्म पीडन से रहित जीवन जीने का उपदेश दिया और मध्यम मार्ग अपनाने का रास्ता दिखाया जिसकी शैक्षिक दृष्टिकोण से विस्तृत चर्चा प्रस्तुत षोधपत्र में की गई है।

एक संगठित व्यवस्था के रूप में बौद्ध दर्शन ने भारतीय समाज और अर्थव्यवस्था पर अपना प्रभाव छोडा। बुद्ध के नियमों एवं शिक्षाओं ने उस समय के भौतिक जीवन में नये परिवर्तन लाकर उन्हें वैचारिक रूप से मजबूत किया। बौद्धसाहित्य में उपदेश, नियम एवं धर्म का दार्शनिक विस्तार दृष्टिगोचर होता है।

बौद्धदर्शन के चार आर्यसत्य, जिनके ज्ञान से गौतम बुद्ध, सिद्धार्थ से बुद्ध बन गये, मानवजीवन के यापन की कुंजी है। बौद्धदर्शन के दो रूप हैं–हीनयान एवं महायान। हीनयान बुद्ध के मौलिक शिक्षाओं को मानता है। मौलिक शिक्षाएँ हैं–

1. चार आर्य सत्य 2.अष्टांगिक मार्ग 3.और त्रिरत्न

बुद्ध ने उपदेश दिया कि न तो कर्मकाण्ड के पालन में सुख है, और न तो इन्द्रिय भोग में,सुख तो इन दोनों के मध्य में हो सकता है। इसलिए बुद्ध के मार्ग को मध्यम प्रतिपदा मार्ग कहा जाता है।

महायान वह सम्प्रदाय है,जो बुद्ध की मौलिक शिक्षाओं के साथ –साथ भक्ति में भी विश्वास करता है। वस्तुतः बौद्धदर्शन में मानव प्रतिष्ठा पर अधिक बल दिया गया है। बुद्ध ने आत्मपीडन से रहित जीवन जीने का उपदेश दिया और मध्यम मार्ग अपनाने का रास्ता दिखया।

चार आर्य सत्य–

| | | |
|---|---|---|
| दुख है | – | दुखों की वास्तविकता |
| दुख का कारण है | – | दुख समुदय |
| दुख निवारण की संभावना | – | दुखनिरोध |
| दुखनिवारण का उपाय | – | निरोध मार्ग |

महात्मा बुद्ध ने दुखों से छुटकारा पाने हेतु अश्टांगिक मार्ग का निरूपण किया। भारतवर्ष में वैदिक काल के पश्चात् बौद्धकाल का प्रादुर्भाव हुआ। कोई विचारधारा जब अति को पार करती है तो दूसरी विरोधी विचार धारा को जन्म मिलता है। हमारे देश में भी ऐसा ही हुआ उत्तर वैदिक काल में कठोर वर्णव्यवस्था और कर्म–काण्ड की अति के फलस्वरूप बौद्ध दर्शन अस्तित्त्व में आया। ई.पू. 563 में भारत की इस पुण्यभूमि पर महात्मा बुद्ध का अवतरण हुआ। उन्होंने लोगों के सांसारिक दुःखों की अनुभूति करुणा प्रधान मानवतावादी बौद्ध धर्म की स्थापना की। भारत में बौद्धचिन्तन का प्रभाव 500 ई. पू. से 1200 ई. तक रहा। इतिहासकार इस काल को बौद्धकाल कहते हैं।

महात्मा बुद्ध ने चार आर्यसत्यों की खोज की–

1. संसार दुःखमय है।
2. दुःख का कारण है।
3. दुःखों का निवारण सम्भव है।
4. दुःख निवारण का उपाय है।

दुःखनिवारण अर्थात् निर्वाण की प्राप्ति मनुष्य मात्र के प्रति कल्याण भावना से ही हो सकती है। महात्मा बुद्ध ने अपना यह धर्मोपदेश सर्वप्रथम वाराणसी के सारनाथ नामक स्थान पर दिया था। बौद्धधर्म की स्थापना प्रेम और करुणा पर आधारित थी।

बौद्धकालीन शिक्षा प्रणाली वस्तुतः बौद्ध धर्म प्रचारकों (बोद्ध भिक्षुओं) द्वारा विकसित एक नई शिक्षा प्रणाली थी जिसमें अनुसाशन का विशेष महत्त्व था।

मध्यम मार्ग की अवधारणा– बोद्धचिन्तन में मध्यम मार्गावलम्बन का विशेष महत्त्व है। कहते हैं कि महात्मा बुद्ध ने निर्वाणप्राप्ति के लिए सर्वप्रथम तपस्या का मार्ग अपनाया। एकबार जंगल में तपस्यारत बुद्ध को आदिवासी महिलाओं द्वारा गाये जाने वाले गीता की कुछ पंक्तियां सुनाई पड़ी जिसका भाव था–

वीणा के तारों को बहुत मत कसो
नही ंतो वे टूट जायेगें
वीणा के तारों बिल्कुल ढीला मत छोड़ों
नही ंतो उससे स्वर ही नहीं निकलेंगें।

इस प्रकार इसका आशय स्पष्ठ ज्ञात हुआ कि न तो अधिक कसाव और न ही अधिक ढीला हमें अपने लक्ष्य तक पहुँचा सकती है। लक्ष्य प्राप्त करने के लिए मध्य मार्ग का चुनाव अपेक्षित ह।

पबज्जा संस्कार– बोद्ध काल में गुरु और शिष्य दोनो को बोद्ध संघों के नियमों का कठोरता के साथ पालन करना होता था। छात्रों का प्रवेश पबज्जा (प्रवज्या) संस्कार द्वारा होता था। बौद्ध मठों एवं विहारों में सभी जाति के बच्चों को प्रवेश दिया जाता था।

पबज्जा का अर्थ होता है– बाहर जाना। चूँकि उस समय बच्चे शिक्षा हेतु परिवार छोड़कर मठ अथवा विहार में जाते थे, इसलिए प्रवेश के समय होने वाले संस्कार को पबज्जा संस्कार कहा जाता था। मठ का भिक्षु उससे निम्नलिखित तीन प्रणों को ऊँचे स्वर में उच्चारित कराता था। इन तीन प्रणों को सरणत्रय (शरणत्रयी) कहा जाता था। ये तीन प्रण थे–

बुद्धं शरणं गच्छामि
धम्मं शरणं गच्छामि
संघं शरणं गच्छामि

तत्पश्चात् गुरु शिष्य को दस उपदेश देते थे। इसे दस–सिक्खापदानि कहते थे। ये दश उपदेश थे–

1. जीवहत्या न करना
2. अशुद्ध आचरण न करना
3. असत्य न बोलना
4. वर्जित समय पर भोजन न करना
5. मादक वस्तुओं का प्रयोन न करना
6. परनिन्दा न करना
7. श्रृंगार की वस्तुओं का प्रयोग न करना
8. नृत्य एवं संगीत आदि से दूर रहना
9. पराई वस्तु ग्रहण न करना

10. सोना चांदी, हीरे जवाहरात आदि कीमती दान न लेना।

छात्र इनके पालन का प्रण लेता था और उसके बाद उसे मठ अथवा विहार मे प्रवेश दिया जाता था और अब उसे श्रमण अथवा सामनेर कहा जाता था।

बौद्ध शिक्षा समानता, प्रेम और करुणा पर आधारित थी। महात्मा बुद्ध ने प्रारम्भ में अपने चार शिष्यों के साथ धर्मोपश्देश के कार्य को आगे बढ़ाया। आगे चलकर बौद्ध मठ एवं विहार बुद्ध की शिक्षाओं के केन्द्र के रूप में विकसित हुए। यहां से एक नई शिक्षा प्रणाली का जन्म हुआ। जिसे बौद्ध शिक्षाप्रणाजी कहते हैं। यह शिक्षा बौद्ध धर्म एवं दर्शन पर आधारित थी। प्रेम, दया स्नेह, करूणा जैसे भावात्मक पक्षों के विकास की प्रधानता थी।

बौद्ध शिक्षाप्रणाली के तीन महत्वपूर्ण तथ्य दृष्टिगोचर होते हैं। इस प्रणाली की प्रथम विशेषता थी कि शिक्षा पर व्यक्ति विशेष  का नहीं बल्कि संघ का नियन्त्रण था। संस्थाओं को शासन का पूर्ण सहयोग प्राप्त था। प्राथमिक शिक्षा निःशुल्क एवं उच्च शिक्षा सशुल्क थी।

6 से 12 वर्ष की आयु तक प्राथमिक शिक्षा

12 से 25 तक उच्च शिक्षा।

उच्च शिक्षा के पश्चात् जो व्यक्ति  बौद्ध धर्म के प्रचार एवं प्रसार कार्य में लगना चाहते थे, उन्हे उपसम्पदा संस्कार के बाद भिक्षु शिक्षा में प्रवेश दिया जाता था। यह शिक्षा सामान्यतः 8 वर्ष की होती थी। शिक्षा ज्ञान प्राप्त करने की प्रक्रिया के रूप में मानी जाती थी।

उपसम्पदा संस्कार– बौद्धकाल में उच्चशिक्षा की समाप्ति के बाद कुछ श्रमण अथवा सामनेर गृहस्थ जीवन में प्रवेश करते थे और कुछ भिक्षु शिक्षा में। भिक्षु शिक्षा में प्रवेश से पहले उनकी पुनः परीक्षा होती ाी और परीक्षा में उत्तीर्ण छात्र श्रमण को दश प्रतिज्ञाओं के अतिरिक्त आठ प्रतिज्ञायें और लेनी होती थी, तब उसे भिक्षु शिक्षा में प्रवेश मिलता था। इसे उपसम्पदा संस्कार कहा जाता था। यह संस्कार दस भिक्षुओं (उपाध्यायों) की उपस्थिति में होता था। सर्वप्रथम श्रमण, भिक्षु का भेष धारण करता था ( हाथ मे कमण्डल और कन्धे पर चीवर) एक भिक्षु श्रमण का परिचय कराता था और अन्य भिक्षु उससे प्रश्न पूछते थे। परीक्षा में सफल श्रमण अब आठ और प्रतिज्ञाएं करता था। इस प्रतिज्ञाओं के लेने के बाद श्रमण को भिक्षु शिक्षा में प्रवेश मिलता था। इस शिक्षा को प्राप्त करने के बाद भिक्षु पूर्ण भिक्षु कहलाते थे और अध्यापन एवं धर्मशिक्षा के लिए योग्य माने जाते थे।

अनुशासन–शिक्षा का मूलाधार–  बौद्ध शिक्षाप्रणाली में गुरु और शिष्य दोनों को ही संघ के नियमों एव अनुशासन का कठोरता से पालन करना होता था। दोनों ही एक दूसरे के आचरण पर दृष्टि रखते थे। भूल होने पर आम सभा में भूल स्वीकार की जाती थी। गुरु शिष्य दोनो ही बहुत संयम से रहते थे। अनुशासित रहते थे। आज की परिस्थितियों में कठोर नियमों को नहीं बल्कि नियमों के पालन की अपेक्षा की जाती है।

संस्कार प्रधान जीवन पद्धति– बौद्धशिक्षा प्रणाली की एक और विशेषता थी कि मठों की दिनचर्या संस्कारप्रधान थी। प्रारम्भ में पड़ें ये संस्कार बच्चों को उच्चजीवन जीने की ओर अग्रसर रखते थे। बौद्ध दर्शन में जीवन के हर पक्ष में मध्यम मार्ग को अपनाने की वकालत की गई है। जब अत्याधिक कटटरपन के कारण समाज में एक कठोरता का वातावरण बन गया था उस समय भगवान बुद्ध के क्रान्ति का उद्घोष मध्यममार्ग का ही परिचायक है।

भारत में बौद्धधर्म के 'धर्मचक्र प्रवर्तनम' का भारतीय संविधान और राजकाज की परम्परा में अत्यधिक महत्त्व है। उसके महत्त्व का सम्राट अशोक ने समझा और सारनाथ में अशोक स्तम्भ की स्थापना कर धर्मचक्र अंकित कराया। उसी से हमाारे भारतीय राजचिह्न को लिय गया है। चारो तरफ मुख किये ये सिंह की प्रतिकृति ही हमारा राजचिह्न है।

बुद्ध के बताये गये अष्टांगिक मार्ग के आचरण एवं मध्यम मार्ग के अनुसरण द्वारा आज हम छात्रों को न अति दण्ड देने की और न अति संयम बरतने की अपेक्षा करते हैं।

महात्मा बुद्ध ने अपने शिष्यों को आत्मनिर्भर बनने के लिए प्रेरित किया और 'आत्मदीपो भव' (आप ही अपना प्रकाश बनो) का उपदेश देकर शिष्यों को स्वयं प्रकाशित होने को कहा, प्रकाश खोजने को कहा और प्रकाश करने को प्रोत्साहित किया उन्होने कर्म और क्रियाशीलता का प्रतिपादन किया तथा प्रत्येक व्यक्ति को अपना–अपना कर्म करने को निर्देशित किया जो निश्चय ही श्रीमद्–भगवद्गीता के भगवान कृष्ण के उपदेश को उपस्थापित करता है। जहाँ श्रीकृष्ण कहते हैं कि हे अर्जुन तू नियत कर्मो को कर क्योंकि कर्म न करने की अपेक्षा कर्म करना श्रेष्ठ है और कर्म न करने सेतेरा शरीर–निर्वाह भी सिद्ध नहीं होगा।

''नियतं करु कर्म त्वं, कर्म ज्यायोह्यकर्मणः।

शरीरयात्रापि च ते न प्रसिघ्दयेदकर्मणः।।''

श्रीमद्भगवद्गीता 3/8

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची–

1. भारतीय शिक्षा का इतिहास – रमनविहारी लाल
2. भारतीय शिक्षा दर्शन – डॉ. रामशकल पाण्डेय
3. शिक्षा के दार्शनिक एवं सामाजिक आधार – गुरुशरण दास त्यागी
4. शिक्षा के तात्त्विक सिद्धान्त – आर. बी. गुप्ता
5. श्रीमद् भगवदगीता – गीता प्रेस गोरखपुर